देवव्रत मेरी दृष्टि में

भारत की शास्त्रीय परंपरा के अनुसार लौकिक साहित्य का प्रथम महाकाव्य महर्षि वाल्मीकि प्रणीत चौबीस हजार श्लोकात्मक रामायण है। इसे आदि काव्य कहा जाता है। तत्पश्चात् दूसरा महान ग्रंथ जिसे भारतीय संस्कृति इतिहास और दर्शन का विश्वकोश कहा जाता है। कृष्णद्वैपायन व्यास रचित 'महाभारत' है। विद्वान मानते हैं कि उन्होनें 'जय' नामक ग्रंथ लिखा था जिसमें आठ हजार आठ सौ श्लोक थे किंतु बाद में अनेक आख्यान उपाख्यान जोड़ने से इसका आकार परवर्ती काल में बढ़ता गया। व्यास जी के शिष्य वैशम्पायन ने इसे राजा परीक्षित को सुनाया और उसके बाद सौति ने नैमिषारण्य में इसे अट्ठासी हजार ऋषियों को सुनाया। तब तक ग्रंथ का आकार एक लाख श्लोक तक पहुंच चुका था।

स्वयं व्यास जी ने ' सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति ' कहकर इस महाकाव्य की उपजीव्यता की भविष्यवाणी कर दी थी जो अक्षरश: सत्य हुई। पाश्चात्य विद्वान तक स्वीकार करते हैं कि महाभारत लगभग 500 बी.सी. में लिखा गया। तब से निरंतर संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में महाभारत पर आधारित पात्रों, घटनाओं या उपाख्यानों पर अनेक ग्रंथों की रचना हुई है और हो रही है। श्री शिवकुमार कुमार मिश्र द्वारा प्रणीत देवव्रत भी महाभारत की उपजीव्यता प्रमाणित करता हुआ अधुनातन ग्रंथ है।

पौराणिक काल गणना के अनुसार महाभारत का युद्ध लगभग 5200 वर्ष पूर्व हुआ। इस युध्द के बाद छत्तीस वर्ष तक युधिष्ठिर ने राज्य किया और फिर यादवों सहित भगवान कृष्ण और भ्राताओं सहित पाण्डव स्वर्ग सिधार गए। तभी कलियुग का प्रारंभ हुआ और आज कलि युगाब्द का 5235 वां वर्ष चल रहा है। किंतु इस महान घटना की प्रासंगिकता शाश्वत प्रवाह के रूप में आज भी गतिमान है जिसकी धारा तनुतर होती दिखाई नहीं देती। महाभारत पात्रों, आख्यानों और घटनाओं का महासमुद्र है फिर भी उसके पुरूष पात्रों में भीष्म, श्रीकृष्ण, अर्जुन, द्रोण, कर्ण दुर्योधन अश्वत्थामा, भीम और धृतराष्ट्र प्रमुख हैं। इन प्रधान नव पात्रों में से यह विशेष बात है कि श्री शिवकुमार मिश्र ने कर्ण तथा अश्वत्थामा पर पहले ही अपनी लेखनी चलाई है और राधेय 1993 में तथा अश्वत्थामा 2003 में प्रकाशित हो चुके हैं। मैंने ये दोनों महाकाव्य पढ़े हैं। अब उन्होंने तीसरे प्रमुख पात्र भीष्म के नायकत्व में बीस अध्यायों में विस्तृत अपना नवीनतम महाकाव्य प्रस्तुत किया है।

महाभारत के भीष्म प्रधान पात्र हैं। वे धृतराष्ट्र तथा पाण्डु के भी दो पीढ़ी पहले उत्पन्न होकर महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद भी चालीस दिनों तक बने रहे और उनके महाप्रयाण के 36 वर्ष बाद ही श्रीकृष्ण तथा समस्त पाण्डव भी गोलोक चले गए। द्वापर युग समाप्त हो गया। महाभारत के अठारह पर्वो में वे आदि पर्व से लेकर अनुशासन पर्व तक लगातार बने रहते हैं। केवल अंतिम पर्वो आश्वमेधिक और मौसल में वे नहीं है।

संस्कृत में महाभारत पर आधारित विपुल साहित्य उपलब्ध है किंतु भीष्म के नायकत्व में कोई महाकाव्य प्रणीत नहीं हुआ है। हिंदी साहित्य में भी जहां तक मेरा ज्ञान है भीष्म के ऊपर खण्ड काव्य तो अनेक लिखे गए हैं किंतु महाकाव्य कोई नहीं था। कवि ने देवव्रत प्रस्तुत कर इस अभाव की पूर्ति कर दी है।

भीष्म तपस्या, त्याग, शौर्य और धर्म के साक्षात विग्रह हैं। भारतीय संस्कृति की महनीयता समृध्दि या भोग के कारण नहीं है अपितु त्याग और तप के कारण है। आज के भारतीय समाज में विशेषत: नई पीढ़ी में हम जिन गुणों का निरंतर ह्रास देख रहे हैं वे कभी आर्य संस्कृति के प्राण थे। माता-पिता के प्रति असीम श्रध्दा, धर्मपालन के प्रति अटूट आस्था, तपस्या के लिए अमेय तितिक्षा, त्याग के लिए अनुपम वैराग्य तथा धर्म रक्षा के लिए अपराजेय शौर्य भारतीय संस्कृति के आधार रहे हैं। भीष्म इन सबके प्रतिमान हैं। वे पिता के सुखों के लिए सर्वस्व बलिदान करने वाले आदर्श पुत्र हैं। आजीवन प्रतिज्ञा पालन पर दृढ़ रहने वाले प्रतिज्ञा पुरूष हैं। समस्त राजाओं को एकाकी ही जीत लेने वाले अप्रतिम महारथी हैं। और राज्य भोग के प्रति पूर्णत: विरक्त हैं।

आरंभ अध्याय से ग्रंथ प्रारंभ होता है और अंतिम अध्याय आरोहण में भीष्म के स्वर्गारोहण में इसका पर्यवसान है। भीष्म का चरित्रांकन बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है। कवि ने कहीं भी महाभारतकार की मूल भावना के प्रतिकूल जाने का यत्न नहीं किया है। फिर भी यह महाभारत के भीष्म संबंधी प्रकरणों का मात्र पद्यानुवाद नहीं है। इसके प्रत्येक सर्ग में नवोन्मेष है। रमणीयता, चारूता और भव्यता काव्य के प्रधान गुण होते हैं जिनके अर्जन के लिए कवि अपनी प्रतिभा, कल्पनाशक्ति, पाण्डित्य और उक्ति कौशल का सहारा लेता है। देवव्रत में भी कवि ने भीष्म के चरित्र को दिव्यता और भव्यता प्रदान करने का सफल उद्यम किया है।

प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास काव्य रचना में प्रधान कारक माने गए हैं। कवि में प्रतिभा तो निस्संदेह है। पर्याप्त एवं गहन अध्ययन का प्रमाण उनके इस काव्य में स्थान-स्थान पर मिलता है। राधेय व अश्वत्थामा जैसे महाकाव्यों का पूर्व में ही सृजन कर उन्होंने पर्याप्त अभ्यास भी अर्जित कर लिया है।

कवि की भाषा प्रांजल और परिमार्जित है। हिन्दी के उन पाठकों को जो संस्कृत से अधिक परिचित नहीं हैं यह तत्समता से लदी अनुभूत हो सकती है। किंतु प्रत्येक कवि की अपनी भाषा शैली होती है। वही उसकी मौलिकता है। मेरे विचार से भाषा विषयानुकूल है।

काव्य की छंदोविविधता श्लाघ्य है। महाकाव्य में हिन्दी के मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों के अतिरिक्त संस्कृत के वृत्तों का भी प्रयोग किया गया है। छंदोबद्धता के प्रति आग्रह, मुक्त और नयी कविता के युग में बहुत कम हो गया है। किंतु कवि की दृष्टि शास्त्रीय है। आज जो काव्य छंदोबद्ध भी लिखे जा रहे हैं उनमें भी छंदों की इतनी विविधता दृष्टिगत नहीं होती और सवैया इत्यादि गुणों पर आधारित छंदों का प्रयोग तो बहुत ही कम मिलता है। देवव्रत में हमें संस्कृत के ऐसे वृत्तों की छटा देखने को मिलती है जिनका प्रयोग भारवि और माघ ने अपने महाकाव्यों में किया था। भुजंगप्रयात, द्वुतविलंबित, वियोगिनी, पंचचामर, मंजुभाषिणी प्रमिताक्षरा, रथोद्धता, वंशस्थ रूचिरा जैसे वृत्तों के उदाहरण यहां मिलते हैं जिनका प्रयोग हिंदी में बहुत ही कम कवियों ने किया है। अपने काव्यों में कवि ने पूर्व में भी राधेय और अश्वत्थामा में यही प्रवृति दिखाई थी। प्रस्तुत काव्य का राजसूय सर्ग भी अधिकांषत: संस्कृत वृत्तों में लिखा गया है। पूरे काव्य में लगभग बत्तीस प्रकार के छंदो का प्रयोग किया गया है।

यद्यपि कवि ने 'एक वृत्तमयै पद्यैरवसाने ऽन्याकृत्तकै:' के विश्वनाथ द्वारा साहित्य दर्पण में प्रतिपातिद महाकाव्य के लक्षणों के सिद्धांत की अपेक्षा 'विविध वृत्तमय: क्वापिसर्ग: कष्चन् दृष्यते' का ही अधिक पालन किया है तथापि आरंभ, विदुर, सत्यवती व शिखण्डी आदि सर्ग मुख्यत: एक वृत्त मय हैं।

कथा का प्रवाह अविरल है । देश काल की अन्विति भी है । केवल सत्यवती तथा राजसूय सर्गों की घटनाओं के बीच काल का लंबा अंतराल है । पर इसे सिंहावलोकन सर्ग के माध्यम से अविच्छिन्न रखा गया है । सभी सर्ग नायक के चरित्र के उत्थान में अर्थात मुख्य कथा के

विकास में उपादेय हैं और असंबद्ध नहीं हैं। केवल विदुर सर्ग इसका अपवाद लगता है। किंतु यदि यह विचार किया जाए कि विदुर द्वारा धृतराष्ट्र को प्रबोध युद्ध को टालने और शांति की स्थापना का ही एक प्रयास था तो इस असंबद्धता का आभास मिट जाता है ।

काव्य नायिका विहीन है जैसा कि कवि के प्रथम दो महाकाव्यों में भी लक्षित होता है। यहां गंगा, सत्यवती तथा अंबा मुख्य स्त्री पात्र हैं किंतु वे नायिका नहीं कहीं जा सकतीं। कवि की दृष्टि में भीष्म की प्रियतमा उनकी प्रतिज्ञा है और यही इस काव्य की अमूर्त नायिका है। उपर्युक्त स्त्री पात्रों का चरित्र चित्रण कवि ने सूक्ष्मता से किया है।

भीष्म का विशद् चरित्र व्यापकता और पूर्णता के साथ वर्णित है। उनका अतद्र्वन्द्व चिंतन सर्ग में विस्तार से चित्रित है। उद्घाटन सर्ग में कर्ण के साथ वार्तालाप में यह भी रहस्योद्घाटन हो जाता है कि भीष्म ऊपर से कितने भी कठोर दिखें उनका अंतर करूणा पूर्ण है। कर्ण का चरित्र भी भली प्रकार चित्रित है। उसमें उग्रता तो है किंतु उद्दंडता एवं अविनय नहीं है। शिखण्डी का परिताप कवि की अपनी मौलिक कल्पना है; जिससे उसका हृदय प्रक्षालित हो जाता है। सारा द्वेष और प्रतिहिंसा अश्रुओं में बह जाते हैं। विदुर सर्ग में विदुर परम नीतिज्ञ के रूप में सम्मुख आते हैं जहां उनका पारंपरिक बहुश्रुत वैदग्ध्य और दार्शनिकता मूर्तिमान हो उठती है। वे बिना किसी संकोच, भय या लोभ के सत्य और हितकारिणी बात ही कहते हैं।

राजा शांतनु और सत्यवती के चरित्रांकन में भी कवि ने उनकी उदात्तता को अक्षुण्ण रखने का सफल प्रयास किया है । राजा शांतनु आखेट व्यसनी और किसी भी सुंदरी पर मोहित हो जाने वाले सामान्य राजा नहीं हैं । गंगा के चले जाने के बाद लगभग बीस वर्ष वे एकाकी रहे। पुत्र देवव्रत के मिलने पर भी चार वर्ष उनके साथ अकेले रहे । इस अवधि में उन्होंने विवाह नहीं किया । विवाह का विचार तभी उठा जब उन्हें लगा कि विद्वान एक पुत्र को तो पुत्र मानते ही नहीं । अत: और भी पुत्र होना चाहिए । सत्यवती के रूप पर मोहित होने के बाद भी वे उसके पिता की अनुचित मांग को अस्वीकृत कर देते हैं । शांतनु का जन्म राजा प्रतीप के यहां बड़ी तपस्या के बाद उनकी वृद्धावस्था में हुआ था और जैसा कि महाभारत से ज्ञात होता है वे स्वर्ग से च्युत महाभिष राजा थे । अत: उनके चरित्र की उदारता और धर्मज्ञता सहज है । पुत्र द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं से उन्हें मार्मिक कष्ट होता है और वे आजीवन इस हेतु व्यथित रहते हैं। सत्यवती को उन्होंने सम्यक्

पाणिग्रहण के पश्चात ही स्वीकृत किया जब उसके जन्म का रहस्य ज्ञात हो गया कि वह दाशराज की केवल पालितापुत्री है।

'अंतिम प्रयास' सर्ग से हमें धृतराष्ट्र और गांधारी के चरित्र की नई झांकी मिलती है। युधिष्ठिर धर्मज्ञ शांतिप्रिय और त्यागी हैं। युद्धोपरांत उनका परिताप बड़ी गहनता से चित्रित हुआ है।

मेरी दृष्टि में देवव्रत एक सुंदर महाकाव्य है, भले ही आचार्य विश्वनाथ द्वारा वर्णित महाकाव्य के लक्षणों का अक्षरश: पालन यहां न किया गया हो। कथा के नायक उदात्त चरित्र भीष्म हैं उनकी कथा पूर्णता के साथ बीस सर्गों में वर्णित है। सर्ग विभाजन वैज्ञानिक है। इसमें अंगीरस वीर है। श्रृंगार, शांत और करूण अन्य रस हैं। युद्ध वर्णन में रौद्र और भयानक रस भी है। देश और काल की अन्विति भी है उद्देश्य की महनीयता भी है। चरित्र चित्रण, प्रकृति चित्रण, सेना प्रयाण और यज्ञ आदि का वर्णन सम्यक् रूपेण किया गया है। और वे वर्णन मुख्य कथा के लिए उपादेय हैं। पूरे काव्य में अनेक चरित्र हैं। अत: पात्र संकुलता और घटना संकुलता है। मानसिक द्वंद्वों का निरूपण भी है। सत्यवती, शिखण्डी और चिंतन सर्ग चिंतन प्रधान हैं तो विदुर, उद्बोधन तथा राजधर्म सर्ग मुख्यत: नीति और ज्ञान प्रधान हैं।

हिंदी के प्रसिध्द समालोचक डाक्टर नगेन्द्र द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों उदात्त चरित्र, उदात्त भाषा, उदात्त शैली और उदात्त उद्देश्य की दृष्टि से तो यह रचना महाकाव्य कोटि में रखे जाने की पात्रता रखती ही है।

भीष्म के चरित्र के कतिपय दोषों को आधुनिक हिंदी लेखकों ने अतिरंजित कर दिया है विशेषत: अम्बा प्रकरण। महाभारत के सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि काशी राज्य में यह प्रथा ही थी कि स्वयंवर का आयोजन करते समय कन्या को वीर्यषुल्का अर्थात विक्रमजेय घोषित किया जाये। काशीराज ने यही किया था और भीष्म ने अपने विक्रम से वहां उपस्थित सभी राजाओं को परास्त कर वे राज कन्याएं जीती थीं। बाद की पीढ़ी में भी हम देखते हैं कि भीम की पत्नी..... विक्रम से प्राप्त की गईं । दुर्योधन की पत्नी भानुमती भी विक्रम से ही प्राप्त की गईं काशीराज कन्या ही थी । इससे स्पष्ट है कि यदि शाल्व द्वारा अम्बा का प्रत्याख्यान न किया जाता तो भीष्म पर कन्या हरण का कोई दोष न लगता । अम्बा का शाल्व के प्रति अनुराग उन्हें अज्ञात था । और जब यह निवेदित किया गया तो उन्होंने अपनी

पुत्री की तरह अम्बा को पुरोहितों और रक्षकों के साथ शाल्व के पास उसकी इच्छा से भेज दिया।

भीष्म के चरित्र पर दूसरा दोषारोपण होता कि उन्होंने अपने गुरू परशुराम जी की आज्ञा न मानकर उनसे युद्ध जैसा अपराध किया। यह घटना सत्य है इससे भीष्म का गौरव नहीं बढ़ा किंतु वे अपने ब्रहमचर्य धर्म पर स्थिर रहे। इसके लिए उन्हें कोई लोभ और कोई भय डिगा नहीं सका। द्रौपदी के चीर हरण के मूक दर्शक रहने वाले भीष्म को सभी दोषी मानते हैं। कवि ने द्यूत सभा का वर्णन न करके इस प्रकरण की उपेक्षा कर दी है। किंतु फिर भी चिंतन सर्ग में भीष्म अपनी निष्क्रियता पर पश्चाताप करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

भीष्म का अंतिम दोष यह बताया जाता है कि उन्होंने अधर्म के पक्ष में युद्ध किया। यहां भी उनकी प्रतिज्ञा ही उनकी बेड़ी बन गई। उन्होंने अपने पिता को वचन दिया था कि वे सिंहासन की आज्ञा का पालन करेंगे और उसकी सेवा में रहेंगे। सिंहासनस्थ व्यक्ति में वे अपने पिता की छवि ही देखेंगे और यही वचन उन्हें इस विषम परिस्थिति में ले गये कि सब कुछ जानते हुए भी वे कुरू पक्ष की ओर से लड़े। किंतु इसका प्रायश्चित उन्होंने अपनी ही मृत्यु का रहस्य युधिष्ठिर को बताकर कर लिया।

कवि का शिल्प विधान प्रौढ़ है। 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्' की अपेक्षा वह 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' में अधिक रूचि रखता प्रतीत होता है। स्थान-स्थान पर अलंकरण का मोह कवि को है और यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे शब्दालंकार और अनेक अर्थालंकार यहां सुजटित हैं। कई अप्रचलित अलंकार जैसे परिसंख्या, मुद्रा, पुनरूक्तवदाभास, ब्याजनिंदा, विशेषोक्ति, आदि का प्रयोग कवि के कौशल को दर्शाता है और उसके भाषा पर अधिकार को अभिव्यंजित करता है। भाषा में समासों का अधिक प्रयोग हिंदी के पाठकों को उतना रमणीय नहीं लगता किंतु कम शब्दों में अधिक कह देने का यह एक अमोघ साधन है।

संस्कृत के कवियों में कवि भारवि और माघ से प्रभावित है। 'राजसूय' सर्ग पर शिशुपाल वध का प्रभाव स्पष्ट है। तो हिंदी के कवियों में वह प्रसाद और दिनकर से अधिक प्रभावित लगता है। युधिष्ठिर के परिताप में दिनकरकृत 'कुरूक्षेत्र' का प्रभाव लक्षित होता है। फिर भी इस ग्रंथ में मौलिकता का अभाव नहीं है।

आज के इस क्षण जीवी युग में जब सद्य: लाभ ही प्रवृत्ति का परिचालक बन गया है, शाश्वत मूल्यों पर आधारित और महत् संदेश से युक्त महाकाव्य का प्रणयन विरल घटना है। जिसके लिए प्रतिभा, विशद अध्ययन, गंभीर अंतर्दृष्टि, लोक मंगल की कामना और असीमित धैर्य की आवश्यकता होती है। यदि ऐसा सृजन होता है तो वह ईष्वर की कृपा एवं लेखक के सुकृतों का ही सुफल है।

भारत की चिरंतन कल्याणमयी शाश्वत संस्कृति की भव्य झांकी दिखाने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। जिस प्रकार पुत्र का अभ्युदय माता-पिता को आनंदित करता है उसी प्रकार शिष्य का उत्कर्ष गुरू को प्रमोदवर्धक होता है। मैंने 1975-1977 की अवधि में बी.ए. में अध्ययनरत श्री शिव कुमार मिश्र को संस्कृत विषय का अध्यापन किया था। उन्होंने भोपाल विश्वविद्यालय में लगातार पांच वर्ष तक सर्वप्रथम रहकर अपनी मेधा का परिचय दिया था। 1985 में जब वे सिविल सेवा परीक्षा में सफल हुए तो मेरे हर्ष की सीमा नहीं रही। उन्होंने इस परीक्षा में संस्कृत और भूगोल विषय लिए थे। मेरा इस प्रिय शिष्य से सतत संबंध बना रहा और जब मैंने उन्हें एक लेखक के रूप में विकसित होते देखा तो अपार प्रसन्नता हुई। पहले राधेय फिर अश्वत्थामा और अब देवव्रत जैसे तीन महाकाव्य सृजित कर सरस्वती की सेवा करने वाले अपने इस प्रिय शिष्य पर मुझे गर्व है। मैं उन्हें यशस्वी होने का हृदय से आशीर्वाद देता हूं। परम प्रभु से मैं प्रार्थना करता हूं कि उनका ग्रंथ देवव्रत मनीषियों में मान्य हो और भारतीय समाज पर वांछित प्रभाव छोड़ सके। मेरी हार्दिक बधाई एवं अनंत मंगल कामनाएं।

रामकृष्ण सराफ
दिनांक : 24/04/2010
ई-7/562, अरेरा कालोनी,
भोपाल, पिनकोड-462 016,
म.प्र.
दूरभाष- 0755-2424424